International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 431-432

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 431-432
© 2017IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-03-2017
Accepted: 28-04-2017

डॉ० राम संयोग राय
सह प्राचार्य, संस्कृत विभाग,
नागार्जुन–उमेश संस्कृत
महाविद्यालय, तरौनी, दरभंगा, बिहार,
भारत

Corresponding Author:
डॉ० राम संयोग राय
सह प्राचार्य, संस्कृत विभाग,
नागार्जुन–उमेश संस्कृत
महाविद्यालय, तरौनी, दरभंगा, बिहार,
भारत

संस्कृत वाङ्मय में अर्थ–विमर्श

डॉ० राम संयोग राय

प्रस्तावना

सफल, सुखद एवं सरस जीवन के लिए अर्थ की उपादेयता है, जिसके वाचक हैं – धन, दौलत, सम्पत्ति, वित्त, पूँजी, निधि और रुपया। संस्कृत वाङ्मय में पुरुषार्थ–चतुष्टय के अन्तर्गत अर्थ का विशद विवेचन है। वस्तुतः आत्मज्ञानोपयोगी मानव शरीर को ही पुरुषार्थ–चतुष्टय (चतुर्वर्ग) का अधिकारी माना गया है। सांसारिक भोगों से आकर्षित मानव का अभीष्ट है–अर्थप्राप्ति। इसके विषय में कहा गया है– ''अर्थ्यते सर्वैः इति अर्थः।'' नी.वा. अर्थसमुद्देश में वर्णित है– ''यतः सर्वप्रयोजन–सिद्धिः स अर्थः।'' प्रायः मानव स्वाभाविकरूप से अर्थाभिलाषक होता है, क्योंकि अर्थ सुख–समृद्धि का प्रमुख साधन है, जिससे अभिप्रेरित होकर इसकी प्राप्ति हेतु वह सक्रिय रहता है। वात्स्यायन ने इसे व्यापक रूप से परिभाषित किया है।[1] अर्थ के परंपरागत स्रोत हैं – कृषि, पशुपालन, उद्योग तथा वाणिज्य।
संस्कृत में वार्ता से भी अर्थ का बोध होता है, जिसकी प्रशंसा वेदव्यास ने ही है–

कर्मभूमिरियं राजान्निह वार्ता प्रशस्यते।
कृषि–वाणिज्य–गोरक्ष्यं शिल्पानि विविधानि च।।[2]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अर्थ को भूमि माना है। पृथ्वी रत्नगर्भा है, जो जीवन–निर्वाह के लिए प्राणियों को समस्त पदार्थों को प्रदान करती है, अतः धन तथा जीविका हेतु इसकी सुरक्षा करनी चाहिए।[3] पंचकोशों में प्रथम कोश अन्नमय कोश है। राज्य के सप्तांगों में भी कोश की चर्चा है।[4] पृथ्वी से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के अन्नों को खाकर ही मानव जीवन व्यतीत करता है। वेदव्यास ने कहा है– ''अन्नाद् भवन्ति भूतोनि।''[5] अतः तैत्तिरीयोपनिषद् में ऋषि के द्वारा वर्णित है– ''अन्नं बहुकुर्वीत।''[6] उन्होंने यह भी कहा है कि इसकी निन्दा एवं अवहेलना नहीं करनी चाहिए।[7]
जागतिक आवश्यकताओं की पूर्ति अर्थ से ही होती है, अतः इसकी प्राप्ति के निमित्त सदैव मानव को प्रयत्नशील एवं उद्योगशील रहना चाहिए। उक्त सन्दर्भ में हितोपदेश का कथन अत्यन्त ही सटीक है– ''उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।''[8] अर्थ की उत्पत्ति के विषय में श्रीमद्भागवतमहापुराण में उल्लिखित है – ''अर्थं बुद्धिस्तूयत।''[9] इसकी वृद्धि तथा वशिता के विषय में शुक्राचार्य का कथन द्रष्टव्य है–

नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः स्वल्पकोऽपि विवर्धते।
तिर्यञ्चोऽपि वशं यान्ति शौर्यनीतिबलैर्धनैः।।[10]

धन की प्राप्ति तथा सुरक्षा में विनयशीलता की विशेष भूमिका है, क्योंकि हितोपदेश में नारायण पंडित का मानना है–

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं, ततः सुखम्।।[11]

अप्राप्त धन की प्राप्ति, पालन, रक्षा, अभिवृद्धि तथा पात्र–विनियोजन के विषय में याज्ञवल्क्यस्मृति में व्याख्यायित है–

अलब्धमीहेद्धर्मेण लब्धं यत्नेन पालयेत।
पालितं वर्धमेनीत्या वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत्।।[12]

चाणक्य के अनुसार वैश्यों का बल वित्त है, जो अपने कार्यों से राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि में सदा उद्योगशील रहते हैं। इस संदर्भ में आदिकवि वाल्मीकि का कथन अत्यन्त ही समीचीन है–

कच्चित् ते दायिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।
वार्तायां सश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते।।[13]

चरकसंहिता के अनुसार तीन प्रकार की एषणाओं में धन दूसरी एषणा है, जिसे मनु ने पाँच प्रकार की मान्यताओं के कारण में प्रथम माना है।[14] यह छः सांसारिक सुखों में प्रथम है। मम्टानुसार काव्य का दूसरा प्रयोजन अर्थ है।[15] समाज में धनवानों का सम्मान किया जाता है, सर्वत्र उनकी प्रशंसा की जाती है तथा बलवानों में उनकी गिनती होती है।[16]
भर्तृहरि ने लिखा है– ''सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।''[17] उनसे सभी मित्रता करते हैं।[18] लेकिन सदोष अर्थ से समाज में कुव्यवस्था पनपती है। महाकवि भारवि ने अर्थ एवं काम को हिंसादि दोषों से युक्त माना है, क्योंकि ये तत्त्व ज्ञान के विनाशक हैं।[19] बाणभट्ट ने भी कादम्बरी (शुकनाशोपदेश) में धन (लक्ष्मी) के अवगुणों का वर्णन किया है। संसार में सभी अर्थ के अधीन होते हैं, लेकिन यह किसी का नहीं। निर्धनता अनर्थों की जड़ है, जिससे सभी रिश्तेदार विमुख हो जाते हैं तथा पत्नी के द्वारा भी निर्धन पुरुष तिरस्कृत होता है।[20] कविताकामिनी के हास महाकवि भास तथा सामाजिक विश्लेषक महाकवि शूद्रक ने चारुदत्त की दशा का मार्मिकता से यथार्थ चित्रण किया है।

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैतिशीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते।।
दारिद्र्यान्मरणाव्दा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।।
धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात् कोपप्रसादा विफलीभवन्ति।।[21]

अर्थ से शेष पुरुषार्थो की सिद्धि होती है। विद्यावान्, विनयी एवं सदाचारी इसका सदुपयोग करते हैं। इससे वे परोपकार एवं धर्मानुष्ठान जैसे पावन कर्मों को करते हैं, लेकिन मूर्ख, अविनीत और दुराचारी इसे पाकर और मोहित होकर सब कुछ भूल जाते हैं। यथा –

न सम्पराय प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तलोभेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।।[22]

धन की स्थिति क्षणिक तथा अस्थायी है, अतः इसके प्रति ज्यादा व्यामोह अनुचित है। इसका उपभोग ''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'' (ईशावास्योपनिषद–1)। भाव से करना चाहिए। भाव से करना चाहिए। दान, भोग और नाश ये तीन गतियाँ हैं।[23] इसकी लालसा एवं तृष्णा नहीं करनी चाहिए। सम्पत्ति के सन्तोष की बात प्रकारांतर से महाकवि माघ ने शिशुपालवध में भी कही है।[24] अर्थ के सम्बन्ध में सन्तोष आवश्यक है, क्योंकि मनु ने मनुस्मृति में लिखा है–

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।[25]

राज्य के सप्तांगों में कोशवृद्धि करों के द्वारा की गयी है। राज्य की आर्थिक उन्नति तथा प्रजा के पालन–पोषण के लिए उससे कर लिया जाता है। न्याय–संगत कर विधान से कोश सदैव बढ़ता है।[26] कालिदासकालीन भारत में उपज का छठा भाग कर लिया जाता था।[27] अनुचित कर राष्ट्र के लिए हितकर नहीं माना गया है। कर–ग्रहण के विषय में मनु का कथन अत्यंत ही न्यास–संगत है–

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।।[28]

इस प्रकार वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में जीवन के सभी क्षेत्रों में अर्थ की अत्यन्त ही उपादेयता है। इसका अस्तित्व अर्थ पर ही अवलंबित है। सम्पूर्ण अर्थविज्ञान इसके चारों ओर चक्कर काटता है। क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था को इसने गतिशीलता प्रदान की है। भारत को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने की जरूरत है, क्योंकि वैश्विक फलक पर आर्थिक दृष्टि से सशक्त राष्ट्र का सम्मान सभी राष्ट्र करते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्र के विभागों में अर्थ से संबंधित एक प्रमुख विभाग है राजस्व। उपर्युक्त विवेचन अर्थ विषयक विनियोग की शिक्षा प्रदान करता है। अतः इसके अर्जन, संवर्धन, संरक्षण एवं उपयोग के प्रति सजगता एवं सतर्कता की अनिवार्यता है।

संदर्भः

1. विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः। कामसूत्र, 1/9।
2. महाभारत, शांतिपर्व, 167/11।
3. शुक्रनीति, 1/180।
4. रघुवंश, 1/60।
5. गीता, 3/14।
6. तैत्तिरीयोपनिषद् 3/9/1।
7. वही, 3/7/1, 3/8/1।
8. हितोपदेश, मित्रलाभ–31।
9. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 4/1/51।
10. शुक्रनीति, 1/28।
11. हितोपदेश, कथामुख, मित्रलाभ–6।
12. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/13/353।
13. रामायण, 2/100/47।
14. मनुस्मृति, 2/136।
15. काव्यप्रकाश, 1/2।
16. हितोपदेश, मित्रलाभ, 135।
17. नीतिशतक, 32।
18. हितोपदेश, मित्रलाभ, 138।
19. किरातार्जुनीय, 11/20।
20. हितोपदेश, मित्रलाभ, 148।
21. चारुदत्त, 1/6, मृच्छकटिक, 1/11, 5/40।
22. कठोपनिषद्, 1/2/6।
23. नीतिशतक, 34।
24. शिशुपालवध, 2/32।
25. मनुस्मृति, 4/12।
26. महाभारत, शांतिपर्व, 71/18।
27. अभिज्ञानशाकुन्तल, 2/13।
28. मनुस्मृति, 7/129।